Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education
Vol. 16, Issue No. 6, May-2019, ISSN 2230-7540

वर्तमान युग में गीता की सार्वभौमिकता

Dr. Parveen Kumar*

Assistant Professor Sanskrit, D.A.V College, Pehowa, Kurukshetra

सारांश – *वर्तमान युग में जब इंसान लोभ, द्वेष आदि की भावना से परिपूर्ण है। उस समय में श्रीमद्भगवद्गीता ही इंसान को सन्मार्ग तक पहुंचा सकती है। आज के युग में गीता ही हमें सुख - दुःख, लाभ - हानि, जय - पराजय के समान रूप से रहने की शिक्षा देती है। जिस शाश्वत ग्रंथ से किसी संप्रदाय विशेष का संबंध न हो, बल्कि समस्त मानव जाति का उस पर समान अधिकार हो, तो उस महान ग्रंथ की सार्थकता का अंदाजा इसी बात से लग जाता है।*

----------X----------

भूमिका

जयन्ति वाचो बन्धनच्छिदो-

हरिप्रगिता निगमान्तनिश्चयुता।

सुसंगमा ज्ञानसुभक्तिकर्मणा

मनोहरो धर्मभिदां समन्वयः।।

महाभारत ग्रंथ को मैं आधुनिक अर्थ में इतिहास नहीं मानता। इसके प्रबल प्रमाण आदि पर्व में ही है। पात्रों की अमानुषी और अतिमानुषी उत्पत्ति का वर्णन करके व्यास भगवान ने राजा-प्रजा के इतिहास को मिटा दिया है। उस में वर्णित पात्र मूल में ऐतिहासिक भले ही हो, परंतु महाभारत में तो उनका उपयोग व्यास भगवान ने केवल धर्म के दर्शन कराने के लिए ही किया है।

महाभारतकार ने भौतिक युद्ध की आवश्यकता नहीं, उसको निरर्थकता सिद्ध की है। विजेता ने रुदन कराया है पश्चात्ताप कराया है और दुःख के सिवा और कुछ नहीं रहने दिया।

इस महाग्रंथ में गीता शिरोमणि रूप से विराजती है। उसका दूसरा अध्याय भौतिक युद्ध व्यवहार सिखाने के बदले स्थितप्रज्ञ के लक्षण सिखाता है। स्थितप्रज्ञ का ऐहिक युद्ध के साथ कोई संबंध नहीं होता, यह बात उसके लक्षणों में से ही मुझे प्रतीत हुई है। साधारण पारिवारिक झगड़ों के औचित्य - अनौचित्य का निर्णय करने के लिए गीता जैसी पुस्तक की रचना संभव नहीं है। गीता के कृष्ण मूर्तिमान शुद्ध संपूर्ण ज्ञान हैं,। परंतु काल्पनिक है। यहां कृष्ण नाम के अवतारी पुरुष का निषेध नहीं है। केवल संपूर्ण कृष्ण काल्पनिक है, संपूर्णावतार का आरोपण पीछे से हुआ है। अवतार से तात्पर्य है शरीरधारी पुरुष विशेष। जीवमात्र ईश्वर के अवतार है, परंतु लौकिक भाषा में सबको हम अवतार नहीं कहते। जो पुरुष अपने युग में सबसे श्रेष्ठ धर्मवान् है, उसे भावी प्रजा अवतारूप से पूजती है। इसमें मुझे कोई दोष नहीं जान पड़ता। इसमें न तो ईश्वर के बड़प्पन में कमी जाती है, न उसमें सत्य को आघात पहुंचता है। आदम खुदा नहीं, लेकिन खुदा के नूर से आदम जुदा नहीं। जिसमें धर्म - जागृति अपने युग में सबसे अधिक है वह विशेषावतार है। इस विचार-श्रेणी से कृष्णरूपी संपूर्णावतार आज हिंदू-धर्म में साम्राज्य भोग रहा है।

यह दृश्य मनुष्य की अंतिम सद्भिलाषा का सूचक है। मनुष्य को ईश्वररूप हुए बिना चैन नहीं पड़ता, शांति नहीं मिलती। ईश्वररूप होने के प्रयत्न का नाम सच्चा और एकमात्र पुरुषार्थ है और यही आत्मदर्शन है यह आत्मदर्शन सब धर्म - ग्रंथों का विषय है, वैसे ही गीता का भी है। पर गीताकार ने इस विषय का प्रतिपादन करने के लिए गीता नहीं रची, वरन् आत्लार्थी को आत्मदर्शन का एक अद्वितीय उपाय बतलाना गीता का आशय है। जो चीज हिंदू धर्म - ग्रंथों में छिट - पुट दिखाई देती है, उसे गीता ने अनेक रूपों में, अनेक शब्दों में, पुनरुक्ति का दोष स्वीकार करके भी, अच्छी तरह स्थापित किया है।

तात्पर्य, गीता की भक्ति बाह्याचारिता नहीं है, अंधश्रद्धा नहीं है। गीता में बताये उपचार का बाह्य चेष्टा या क्रिया के साथ कम से कम संबंध है, माला, तिलक, अर्घ्यादि साधन भले ही भक्त बरते, पर ये भक्ति के लक्षण नहीं है। जो किसी का द्वेष नहीं करता, जो करुणा का भंडार है और ममतारहित है,

www.ignited.in

जो निरहंकार है, जिसे सुख-दुःख, शीत-उष्ण समान है, जो क्षमाशील है, जो सदा संतोषी है, जिनके निश्चय कभी बदलते नहीं, जिसने मन और बुद्धि ईश्वर को अर्पण कर दिये हैं, जिससे लोग उद्वेग नहीं पाते, जो लोगों का भय नहीं रखता, जो हर्ष - शोक भयादि से मुक्त है, जो पवित्र है, जो कार्यदक्ष होने पर भी तटस्थ है, जो शुभाशुभ का त्याग करनेवाला है, जो शत्रु - मित्र पर समभाव रखनेवाला है, जिसे मान - अपमान समान है, जिसे स्तुति से खुशी नहीं होती और निंदा से ग्लानि नहीं होती, जो मौनधारी है, जिसे एकांत प्रिय है, जो स्थिरबुद्धि है, वह भक्त है। यह भक्ति आसक्त स्त्री - पुरुषों में संभव नहीं है।

गीता को समझने के लिए उसकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि जानना आवश्यक है। गीता उपनिषदों की एक व्याख्या है। उपनिषद भारत के बाइबिल हैं। उनका वहीं स्थान है, जो नव व्यवस्थान का है। उपनिषदों के अंतर्गत सौ (से अधिक) पुस्तक हैं। जिनमें कुछ बहुत छोटी और कुछ बड़ी हैं, और प्रत्येक एक पृथक् ग्रंथ है। उपनिषद् किसी उपदेष्टा के जीवन पर प्रकाश नहीं डालते, केवल सिद्धांतों की शिक्षा देते हैं। वे प्रायः राजाओं के दरबार में (आयोजित विद्वत सभाओं में) होने वाले विचार विमर्श की संकेतलिपि में ली हुई टिप्पणियाँ (जैसे) हैं। उपनिषद् शब्द का अर्थ् बैठके (या एक शिक्षक के समीप बैठना) हो सकता है। तुम लोगों में जिन्होंने कुछ उपनिषद् पढे होंगे, वे समझ सकते हैं कि वे किस प्रकार संकेतलिपि में लिखे संक्षिप्त रेखाचित्र हैं। एक लंबे विचार - विमर्श के बाद, संभवतः स्मृति के आधार पर, उनको लिख लिया जाता था। कठिनाई यह है कि तुमको पृष्ठभूमि बहत ही कम मिल पाती है। केवल सुदीप्त स्थलों का ही वहाँ उल्लेख है। कोई (निश्चयपूर्वक) यह नहीं जानता कि वे कितने प्राचीन हैं। गीता उपनिषदों के विचारों को ले लेती है और (कुछ) स्थलों पर उनके शब्दों को भी। उनको, उपनिषदों द्वारा निरूपित संपूर्ण विषय को एक ठोस, संघटित और व्यवस्थित ढंग से स्पष्ट करने की दृष्टि से सूत्रबद्ध किया गया है। हिंदुओं के (मूल) धर्मग्रंथों को वेद कहा जाता है। वे उनकी लिखित राशि - इतने विशाल हैं कि यदि उनके मूल ग्रंथों को ही यहां लाया जाय, तो वे इस कमरे में समायेंगे नहीं। उनमें अनेक लुप्त हो गये हैं। उनको अनेक शाखाओं में विभक्त किया गया, हर शाखा कतिपय पुरोहितों के मस्तिष्क में रख दी गयी और स्मृति के द्वारा जीवित रखी गयी। ऐसे व्यक्ति अब भी हैं। वे एक भी स्वर बिना भूले, वेदग्रन्थों की एक के बाद दूसरे की, पुनरावृत्ति कर सकते हैं। वेदों के बृहत्तर अंश विलुप्त हो गये हैं। अवशिष्ट लघु अंश स्वयं में ही एक पुस्तकालय है। इनमें जो प्राचीनतम है, उसमें ऋग्वेद की ऋचाएं संग्रहीत हैं। आधुनिक विद्वान् का उद्देश्य (वैदिक साहित्य के अनुक्रम को) पुनः प्रतिष्ठित करना है। प्राचीन सनातनी दृष्टि कोण नितांत भिन्न है, जैसे बाइबिल संबंधी तुम्हारा सनातनी दृष्टिकोण आधुनिक विद्वान से नितांत भिन्न है। वेद दो भागों में विभक्त हैं एक उपनिषदों का - - ज्ञानकांड, और दूसरा कर्मकांड।

गीता के लिए एक प्रारंभिक अल्प भूमिका आवश्यक है। दृश्य कुरुक्षेत्र के युद्धक्षेत्र में न्यस्त है। एक ही वंश की दो शाखाएँ पाँच सहस्र वर्ष पूर्व भारत के साम्राज्य के निमित्त युद्ध कर रही थीं। पाण्डवों के पास अधिकार था, किंतु कौरवों के पास बल। पाण्डव पाँच भाई थे और वे एक वन में वास कर रहे थे। कृष्ण पाण्डवों के मित्र थे। कौरव लोग उनको सुई की नोक को ढक सकने भर की भी धरती नहीं देना चाहते थे। गीता का आरम्भ इस अति सारगर्भित श्लोक से होता है: उठ, हे पार्थ! त्याग दे हृदय की इस क्षद्र दुर्बलता को, इस कलैव्य को! उठ खड़ा हो और लड़! तब अर्जुन (कृष्ण से) इस विषय पर तर्क करने का प्रयास करते हुए उच्चतर नैतिक प्रश्नों को उठाता है --अप्रतिरोध प्रतिरोध से किस प्रकार उत्तम है, आदि। वह अपने को न्यायानुकूल सिद्ध करने का यत्न करता है, लेकिन वह कृष्ण को मूर्ख नहीं बना पाता। कृष्ण उच्चतर आत्मा या ईश्वर हैं।

ज्ञानी उनके लिए शोक नहीं करता, जो जीवित हैं और न उनके लिए, जो मरते हैं। (कृष्ण कहते हैं:) न तुम मर सकते हो, न मैं मर सकता है। कभी भी ऐसा समय नहीं था, जब हमारा अस्तित्व न रहा हो। न कभी ऐसा समय होगा, जब हमारा अस्तित्व नहीं होगा। जैसे इस जीवन में मनुष्य आरम्भ बचपन से करता और (यौवन तथा वृद्धावस्था को पार करता है, वैसे ही मृत्यु होने पर वह दूसरे प्रकार के शरीर में प्रविष्ट मात्र हो जाता है)। ज्ञानी व्यक्ति शोकग्रस्त क्यों हो? और इस भावुकता का, जिसने तुम्हें पकड़ रखा है, आदि कहाँ है? यह है इन्द्रियों में। यह मात्रा स्पर्श (इन्द्रियों और विषयों का संयोग है), जो शीत और उष्ण, सुख और दुःख, सुख और पीड़ा आदि सत्ता के समस्त गुणों को उत्पन्न करता है। वे आते जाते रहते है। मनुष्य इस क्षण दुःखी है, दूसरे में सुखी। इस तरह वह आत्मा के स्वरूप का अनुभव नहीं कर सकता।

यह एक दूसरा महान् पाठ है। जब तक समस्त भौतिकवादी विचारों को तिलांजलि नहीं दी जाती, आध्यात्मिकता की उपलब्धि कदापि नहीं हो सकती। इन्द्रियों में क्या है? इन्द्रियाँ सब भ्रम हैं। लोग मरने के बाद भी (स्वर्ग में) उनको - दो आँखों, एक नाक को - धारण किये रखना चाहते हैं। कुछ यह कल्पना करते हैं कि वहाँ उनकी इन्द्रियाँ प्रस्तुत से अधिक संख्या में होंगी। वे ईश्वर को उसके भौतिक शरीर को - एक सिंहासन पर आसीन चिरंतन काल तक देखते रहना चाहते हैं। ऐसे व्यक्तियों की वासनाएँ शरीर, खाने - पीने और भोग की होती हैं। वह दीर्घीकृत भौतिकवादी जीवन ही है। मनुष्य इस जीवन के परे किसी अन्य वस्तु की बात सोच नहीं सकता।

www.ignited.in

यह जीवन पूर्णतया शरीर के लिए है। ऐसा व्यक्ति उस एकाग्रता को कभी नहीं प्राप्त कर पाता, जो मुक्ति की ओर ले जाती है। वेद केवल तीन गुणों - सत्त्व , रजस् और तमस् - से संबंधित विषयों की ही शिक्षा देते हैं। वेद केवल प्रकृति के विषयों के संबंध में शिक्षा देते हैं। लोग जिस विषय को पृथ्वी पर नहीं देखते, उसके संबंध में कुछ भी सोच नहीं सकते। यदि वे स्वर्ग की बात करते हैं, तो वे एक सिंहासनारूढ़ राजा की, धूप जलाते हुए लोगों की ही कल्पना कर पाते हैं। यह सब प्रकृति है, प्रकृति के परे कुछ नहीं। अतएव वेद प्रकृति के सिवा और कोई शिक्षा नहीं देते। प्रकृति के परे जाओ, सत्ता केन्द्रों के परे, स्वयं अपनी सत्ता के परे जाओ, किसी की चिन्ता न करो - न अच्छे की, न बुरे की।

जैसे कछुआ अपने पैरों को भीतर खींच सकता है, और यदि तुम उस पर प्रहार करो तो एक भी पैर बाहर नहीं निकलता, इसी प्रकार स्थितप्रज्ञ भी अपनी ज्ञानेन्द्रियों को भीतर खींच सकता है, और उन्हें कोई भी वस्तु बाहर जाने के लिए विवश नहीं कर सकती। उसको कुछ भी हिला नहीं सकता, न कोई प्रलोभन, न कुछ और। विश्व टूटकर उसके चारों ओर बिखर जाय, तो भी वह उसके मन में एक लहर नहीं उठा पाता।

इसमें से हम देखते हैं कि ज्ञान प्राप्त करना , भक्त होना ही आत्मदर्शन है। आत्मदर्शन उससे भिन्न वस्तु नहीं है। जैसे रुपये के बदले में जहर खरीदा जा सकता है और अमृत भी लाया जा सकता है, वैसे ज्ञान या भक्ति के बदले बंधन भी लाया जा सके और मोक्ष भी, यह सम्भव नहीं है। यहां तो साधन और साध्य, बिलकुल एक नहीं तो लगभग एक ही वस्तु है, साधन की पराकाष्टा जो है, वही मोक्ष है और गीता के मोक्ष का अर्थ परम शांति है ।

किन्तु ऐसे ज्ञान और भक्ति को कर्म फल त्याग की कसोटी पर चढ़ना। ठहरा लौकिक कल्पना में शुष्क पंडित भी ज्ञानी मान लिया जाता है। उसे कुछ काम करने को नही रहता। हाथ से लोटा तक उठाना भी उसके लिए कर्म - बंधन है। यज्ञशून्य जहां ज्ञानी गिना जाय वहां लोटा उठाने जैसी तुच्छ लोकिक क्रिया को स्थान ही कैसे मिल सकता है?

लौकिक कल्पना में भक्त से मतलब है बाह्याचारी, माला लेकर जप करनेवाला। सेवा कर्म करते भी उसकी माला में विक्षेप पड़ता है। इसलिए वह खाने पीने आदि भोग भोगने के समय ही माला को हाथ से छोड़ता है, चक्की चलाने या रोगी की सेवा - शुश्रुषा करने के लिए कभी नहीं छोड़ता।

इन दोनों वर्गो को गीता ने साफतौर से कह दिया, कर्म बिना किसी ने सिद्धि नहीं पाई। जनकादि भी कर्म द्वारा ज्ञानी हुए। यदि मैं भी आलस्य रहित होकर कर्म न करता रहूं तो इन लोकों का नाश हो जाय। तो फिर लोगों के लिए पूछना ही क्या रह जाता है ?

परन्तु एक ओर से कर्ममात्र बन्धनरूप है, यह निर्विवाद है। दूसरी ओर से देह इच्छा अनिच्छा से भी कर्म करता रहता है। शारीरिक या मानसिक सभी चेष्टाएँ कर्म है। तब कर्म करते हए भी मनुष्य बंधनमुक्त कैसे रहे। जहां तक मुझे मालूम है, इस समस्या को गीता ने जिस तरह हल किया है, वैसे दूसरे किसी भी धर्म - ग्रंथ ने नहीं किया है। गीता का कहना है, फलासक्ति छोड़ो और कर्म करो, आशारहित होकर कर्म करो, निष्काम होकर कर्म करो। यह गीता की वह ध्वनि है, जो भुलाई नहीं जा सकती। जो कर्म छोड़ता है, वह गिरता है। कर्म करते हुए भी जो उसका फल छोड़ता है, वह चढ़ता है। फल त्याग का यह अर्थ नहीं है कि परिणाम के संबंध में लापरवाही रहे। परिणाम और साधन का विचार और उसका ज्ञान अत्यावश्यक है। इतना होने के बाद जो मनुष्य परिणाम की इच्छा किये बिना साधन में तन्मय रहता है, वह फलत्यागी है।

गीता सूत्रग्रंथ नहीं है। गीता एक महान् धर्म - काव्य है। उसमें जितना गहरे उतरिये, उतने ही उसमें से नये और सुन्दर अर्थ लीजिये। गीता जन - समाज के लिए है, उसमें एक ही बात को अनेक प्रकार से कहा है। अतः गीता में आये हुए महाशब्दों का अर्थ युग - युग में बदलता और विस्तृत होता रहेगा। गीता का मूल मंत्र कभी नहीं बदल सकता। वह मंत्र जिस रीति से सिद्ध किया जा सके, उस रीति से जिज्ञासु चाहे जो अर्थ कर सकता है।

गीता विधि - निषेध बतलानेवाली भी नहीं है। एक के लिए जो विहित होता है, वही दूसरे के लिए निषिद्ध हो सकता है। एक काल या एक देश में जो विहित होता है, वह दूसरे काल में, दूसरे देश में निषिद्ध हो सकता है। निषिद्ध केवल फलासक्ति है, विहित है अनासक्ति।

संदर्भ सूची

श्री परमहंस स्वामी अड़गड़ानंद जी, ॥ श्रीमद्भगवद्गीता ॥

विवेकानन्द साहित्य (सप्तम खंड)

महात्मा गांधी (अनासक्ति योग)

www.ignited.in

विवेकानन्द साहित्य (नवम खण्ड)

धर्मपाल शास्त्री (गीता सुधानिधि)

बालकृष्ण विरचितम् (शारदामणि लीला चरितम्), प्रथम संस्करण - 1993

धर्मपाल शास्त्री (स्वामी बालकृष्ण भारद्वाज की जीवनी)

विवेकानन्द साहित्य (दशम खंड)

Corresponding Author

Dr. Parveen Kumar*

Assistant Professor Sanskrit, D.A.V College, Pehowa, Kurukshetra